श्रीमद्भगवद्गीता द्वितीय अध्याय श्लोक 39-53

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां श्रृणु।

बुद्ध्यायुक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि।।2.39।।

हे पार्थ! यह समबुद्धि तेरे लिए पहले सांख्ययोगमें कही गयी, अब तू इसको कर्मयोगके विषयमें सुन; जिस समबुद्धिसे युक्त हुआ तू कर्मबन्धनका त्याग कर देगा।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।।2.40।।

मनुष्यलोकमें इस समबुद्धिरूप धर्मके आरम्भका नाश नहीं होता, इसके अनुष्ठानका उलटा फल भी नहीं होता और इसका थोड़ासा भी अनुष्ठान (जन्म-मरणरूप) महान् भयसे रक्षा कर लेता है।

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।

बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्।।2.41।।

हे कुरुनन्दन! इस समबुद्धिकी प्राप्तिके विषयमें व्यवसायात्मिका बुद्धि एक ही होती है। अव्यवसायी मनुष्योंकी बुद्धियाँ अनन्त और बहुशाखाओंवाली ही होती हैं।

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।

वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः।।2.42।।

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।

क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति।।2.43।।

हे पृथानन्दन ! जो कामनाओंमें तन्मय हो रहे हैं, स्वर्गको ही श्रेष्ठ माननेवाले हैं, वेदोंमें कहे हुए सकाम कर्मोंमें प्रीति रखनेवाले हैं, भोगोंके सिवाय और कुछ है ही नहीं - ऐसा कहनेवाले हैं, वे अविवेकी मनुष्य इस प्रकारकी जिस पुष्पित (दिखाऊ शोभायुक्त) वाणीको कहा करते हैं, जो कि जन्मरूपी कर्मफलको देनेवाली है तथा भोग और ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये बहुतसी क्रियाओंका वर्णन करनेवाली है।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।

व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते।।2.44।।

उस पुष्पित वाणीसे जिसका अन्तःकरण हर लिया गया है अर्थात् भोगोंकी तरफ खिंच गया है और जो भोग तथा ऐश्वर्यमें अत्यन्त आसक्त हैं, उन मनुष्योंकी परमात्मामें निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती।

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।

निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्।।2.45।।

वेद तीनों गुणोंके कार्यका ही वर्णन करनेवाले हैं; हे अर्जुन! तू तीनों गुणोंसे रहित हो जा, निर्द्वन्द्व हो जा, निरन्तर नित्य वस्तु परमात्मा में स्थित हो जा, योगक्षेमकी चाहना भी मत रख और परमात्मपरायण हो जा।

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके।

तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः।।2.46।।

सब तरफसे परिपूर्ण महान् जलाशयके प्राप्त होनेपर छोटे गड्ढों में भरे जल में मनुष्यका जितना प्रयोजन रहता है अर्थात् कुछ भी प्रयोजन नहीं रहता, वेदों और शास्त्रोंको तत्त्वसे जाननेवाले ब्रह्मज्ञानीका सम्पूर्ण वेदोंमें उतना ही प्रयोजन रहता है अर्थात् कुछ भी प्रयोजन नहीं रहता।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।2.47।।

कर्तव्य-कर्म करनेमें ही तेरा अधिकार है, फलोंमें कभी नहीं। अतः तू कर्मफलका हेतु भी मत बन और तेरी अकर्मण्यतामें भी आसक्ति न हो।

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।

सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।2.48।।

हे धनञ्जय ! तू आसक्तिका त्याग करके सिद्धि-असिद्धिमें सम होकर योगमें स्थित हुआ कर्मोंको कर; क्योंकि समत्व ही योग कहा जाता है।

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय।

बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः।।2.49।।

बुद्धियोग-(समता) की अपेक्षा सकामकर्म दूरसे (अत्यन्त) ही निकृष्ट है। अतः हे धनञ्जय ! तू बुद्धि (समता) का आश्रय ले; क्योंकि फलके हेतु बननेवाले अत्यन्त दीन हैं।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।

तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।2.50।।

बुद्धि-(समता) से युक्त मनुष्य यहाँ जीवित अवस्थामें ही पुण्य और पाप दोनोंका त्याग कर देता है। अतः तू योग-(समता-) में लग जा, क्योंकि योग ही कर्मोंमें कुशलता है।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।

जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्।।2.51।।

समतायुक्त मनीषी साधक कर्मजन्य फलका त्याग करके जन्मरूप बन्धनसे मुक्त होकर निर्विकार पदको प्राप्त हो जाते हैं।

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।

तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च।।2.52।।

जिस समय तेरी बुद्धि मोहरूपी दलदलको तर जायगी, उसी समय तू सुने हुए और सुननेमें आनेवाले भोगोंसे वैराग्यको प्राप्त हो जायगा।

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।

समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि।।2.53।।

जिस कालमें शास्त्रीय मतभेदोंसे विचलित हुई तेरी बुद्धि निश्चल हो जायगी और परमात्मामें अचल हो जायगी, उस कालमें तू योगको प्राप्त हो जायगा।